प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

डॉ. राम कृष्ण पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग,
महाराज बलवन्त सिंह पी. जी. कालेज. गंगापुर, वाराणसी उ0प्र0

प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को लेकर विद्वानों में विरोधी मत है, एक मत के अनुसार प्राचीन भारत में महिलाओं का स्थान समाज में अत्यन्त उच्च था। पुरुष और स्त्री के आधार पर कोई भेदभाव नहीं था। दोनों समान थे बल्कि कई मामलों में स्त्रियों को पुरुषों से भी अधिक अधिकार सम्पन्न बताया गया है। वहीं दूसरे मत के अनुसार प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं का स्थान कुछ अपवादों को छोड़कर निम्न था। सैद्धान्तिक रूप से तो उनका स्थान अत्यन्त उच्च था पर यथार्थ रूप में समाज में उनका स्थान कभी अच्छा नहीं था। वे सदैव भेदभाव की शिकार रही, और विविध क्षेत्र में प्रतिबंध व निर्योग्यताओं की शिकार रही। मूल्यों, परम्पराओं, उच्च आदर्शों तथा धर्म के नाम पर सदैव ही उनका शोषण होता रहा।

इस तरह दोनों विरोधी मतों के लोग अपने पक्ष को साबित करने के लिये ही उन्हीं प्राचीन धार्मिक, ऐतिहासिक ग्रन्थों के विभिन्न प्रसंगों की सहायता लेते है, परन्तु इस सम्बन्ध में अलतेकर का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है कि– *''विश्व की लगभग सभी प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन करके हम जितने प्राचीनतम काव्य की ओर जाते हैं, स्त्री का स्थान समाज में उतना ही असंतोषजनक पाते हैं, जबकि इसके विपरीत जब हम भारतीय सभ्यता के प्राचीनतम काल पर दृष्टिपात करते हैं तो स्त्रियों का स्थान समाज में उतना ही महत्वपूर्ण पाते हैं। माता, पत्नी और पुत्री सभी रूपों में उसे समाज में अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त था। वास्तव में गृह का अस्तित्व स्त्री के अस्तित्व में ही निहित माना जाता था।*[1] इस शोध पत्र में मैने प्राचीन भारतीय समाज मे ंमहिलाओं की स्थिति का परीक्षण करने के लिये विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति को जानने के क्रम में हम पाते हैं कि वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वह सभी दृष्टियों से पुरुषों के समान समझी जाती थी। वे पुरुषों की भाँति सामाजिक और धार्मिक समारोहों एवं उत्सवों तथा सभा और विचार गोष्ठियों में बिना किसी प्रतिबंध के सम्मिलित होती थी। विचारों का आदान–प्रदान करती थी। बिना पर्दे के स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करती थी। इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन समाज में आम महिलाओं की सार्वजनिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी बिना किसी रोक–टोक की थी और विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सहभागिता का स्वागत किया जाता था, तो ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह ज्ञात हो कि आर्थिक क्षेत्र में उनकी सक्रियता पर प्रतिबंध लगाया था या समाज उसे निबर्न्धित करता हो।

उस युग में बहुत सी ऐसी विदुषी के नाम आते हैं जो सांसारिक मोह–माया से मुक्त होकर आजीवन धार्मिक, आध्यात्मिक चिन्तन में लीन रहती थी जिन्हें ब्रह्मवादिनी कहा गया। इस काल में अनेक ऐसी विदुषी स्त्रियों के उल्लेख मिलते हैं जिन्होंने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं का प्रणयन किया था। इनमें लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला, घोषा, काक्षीतवी, सिकता, निवावरी, रामेशा तथा उर्वशी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।[2] उपनिषदों में भी अनेक ऐसी विदुषी महिलाओं के उल्लेख मिलते हैं जो दर्शन तत्व ज्ञान और तर्क में निपुण थी। वृहदारण्यक उपनिषद में राजा जनक की सभी में गार्गी और याज्ञवल्क्य के बीच शास्त्रार्थ का उल्लेख मिलता है। जिसमें गार्गी ने याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान महापुरुष को अपनी विद्वता से नतमस्तक कर दिया।[3] उक्त सभी प्रसंग यह प्रकट करते है कि स्त्रियों ने अपनी पारम्परिक भूमिका से भिन्न क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाती थी तथा महत्व प्राप्त की थी। जहाँ तक शिक्षा के क्षेत्र में उनकी स्थिति की बात है तो विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। उस युग में लोग शिक्षित, विदुषी पुत्री व बहु की कामना करते थे। उस दौरान सह–शिक्षा के प्रचलन के भी प्रमाण मिलते हैं। उस युग में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति का इसी से पता चल जाता है कि ऋग्वेद में 20 ऐसी विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जो पारम्परिक भूमिका गृहस्थी प्रबंधन से इतर अध्ययन–अध्यापन में लगी थी जिनमें अपाला, घोषा और इन्द्राणी जैसी स्त्रियाँ भी थी।[4] उस युग में बड़ी संख्या में ऐसी स्त्रियाँ भी थी जो अध्यापन कार्य में लगी

थी और उनका समाज में सम्मान की नजरों से देखा जाता था क्योंकि कई पुरुष शिष्यों के नाम (पहचान) उनकी अध्यापिकाओं के नाम पर होने के प्रमाण मिलते हैं। पाणिनी के अनुसार जो स्त्रियाँ अध्यापन कार्य करती थी। वे आचार्या और उपाध्यया कहलाती थी। पाणिनी ने महिला विद्यालय (छात्रीशाला) का भी उल्लेख किया है।[5] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्त्री आचार्यों का उल्लेख मिलता है।[6] शांखायन ग्रह्यसूत्र में भी गार्गी, वाचक्नवी तथा वडवा आदि स्त्रियों के शिक्षिका होने का उल्लेख मिलता है।[7] कात्यायन ने अपने वार्तिक में स्त्री शिक्षिकाओं को उपाध्ययी कहा है। उनके अनुसार समाज में अध्यापक स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक थी।[8] पातंजलि के अनुसार अध्यापिकाओं से पुरुष छात्र भी पढ़ते थे। जैसे औदमेध्या आचार्या से पढ़ने वाले छात्र अपनी आचार्या के नाम से औदमेध कहलाते थे।[9] सामान्य विद्याध्ययन के अतिरिक्त स्त्रियाँ नृत्य–संगीत, चित्रकला, गृह–विज्ञान, युद्धकला, व्याकरण, राजनीतिशास्त्र, गणित, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र जैसे विषयों में भी शिक्षा ग्रहण करती थी। इससे विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सहभागिता का ज्ञान होता है। महाभारत के अनुसार कुन्ती अथर्ववेद में,[10] गान्धारी अर्थशास्त्र[11] में द्रौपदी नीतिशास्त्र[12] में तथा सुभद्रा, दमयन्ती, विदुला और सत्यवती राजनीतिशास्त्र[13] में प्रवीण थी। क्षत्रिय स्त्रियों को सैनिक शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। कैकेयी इसमें पारंगत थी। 'अर्थशास्त्र में स्त्रियों द्वारा सैन्य शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य के महल में सशस्त्र महिला अंगरक्षकों का सन्दर्भ दिया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सशस्त्र महिला अंगरक्षकों की बात कही है जो तीर कमान से सुसज्जित सैनिकों के रूप में होती थी। राज परिवार की स्त्रियाँ प्रशासकीय शिक्षा प्राप्त कर इन क्षेत्रों में अपनी भूमिका का निर्वाह करती थी। ऐसी अनेक स्त्रियों में प्रमाण मिलते हैं जिन्होंने शासन किया और युद्ध में सेना का नेतृत्व किया।

इनमें सातवाहन राजवंशी नागनिका तथा वाकाटक वंशी प्रभावती गुप्ता ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् अपने अल्पवयस्क पुत्र की संरक्षिका बनकर कुशलतापूर्वक शासन का संचालन किया। चालुक्य वंश को अनेक रानियों तथा महिलाओं, जिनमें विजय भट्टारिका, अम्म देवी, मैला देवी, कुमकुम देवी तथा लक्ष्मी देवी के नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है, साम्राज्य के प्रान्तों तथा जिलों के शासकों के रूप में कार्य किया था। इसी प्रकार कश्मीर की अनेक रानियों दिद्दा, सुगन्धा, सूर्यमती तथा रत्ना देवी ने कुशलतापूर्वक शासन का संचालन किया और युद्ध में सेना का नेतृत्व किया।[15]

प्राचीन समाज में महिलाओं का अपना जीवन साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता थी और विवाह प्रायः पूर्ण वयस्क होने पर किया जाता था। यजुर्वेद के अनुसार कन्या का विवाह ब्रह्मचर्यावस्था समाप्त कर लेने के पश्चात् ही करना चाहिये।[16] कई बार स्वयंवर का आयोजन किया जाता था जिसमें स्त्रियाँ अपनी इच्छा से योग्य वर का चुनाव करती थी। इससे महिलाओं की स्वतंत्रता एवं उनके इच्छा के महत्व का ज्ञान होता है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि विवाह को उनके शिक्षा प्राप्ति में बाधक नहीं बनने दिया जाता था ताकि उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। समाज में विधवा विवाह तथा नियोग प्रथा का प्रचलन था जिससे उनकी सामाजिक स्थिति उच्च बनी रही। सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा जैसी कुरीतियों का समाज में प्रचलन नहीं था।

स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार के सन्दर्भ में हिन्दू शास्त्रकारों ने स्त्रीधन का विस्तार से वर्णन किया है। यद्यपि उनके स्वरूप, उस पर स्त्री के आधिपत्य तथा उत्तराधिकार को लेकर कुछ मतभेद भी है। वस्तुतः स्त्री धन से तात्पर्य उस धन से था जिस पर उसका पूर्ण आधिपत्य था और जो उस वस्त्र, आभूषण तथा धनराशि के रूप में विवाह के अवसर पर तथा अन्य विशिष्ट अवसरों पर भेंट स्वरूप माता, पिता तथा पति आदि सम्बन्धियों से प्राप्त होता था। उस युग में महिलाओं द्वारा जीविकोपार्जन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था, वेश्यावृत्ति। भारत में प्रारम्भ से ही इस वृत्ति के अस्तित्व के प्रमाण मिलते है। वास्तव में व्यक्ति की अतृप्त कामवासना, विलासिता सौन्दर्य–पिपासा, स्त्रियों की चरित्रहीनता एवं उसकी जीविका की समस्यायें इस वृत्ति के उद्भव एवं विकास के प्रमुख कारण रहे हैं।

वैदिक काल में इस प्रथा के प्रचलन के अनेक प्रमाण मिलते हैं। महाभारत में वेश्यावृत्ति एक स्थिर संस्था के रूप में पायी जाती है, परन्तु उस युग में 'वेश्या'– शब्द सिर्फ देह व्यापार में लिप्त स्त्रियों के लिये ही प्रयोग नहीं किया जाता था, बल्कि विभिन्न प्रकार की सेवाओं में लगी महिलाओं के लिये भी इस सम्बोधन का प्रयोग हुआ है। अब यहाँ वेश्या सम्बोधन व्यापक अर्थ में है। राजमहलों में भी वेश्याओं की नियुक्ति की जाती थी। ये ही राजा के समस्त व्यक्तिगत कार्य सम्पन्न करती थी। ये केवल कामोपभोग का साधन ही नहीं बल्कि कला की पोषिका भी होती थी और पोषक राजा के लिये गुप्तचरी का कार्य भी करती थी। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि गान्धारी के गर्भवती होने पर उसकी सेवा

सुश्रुषा के लिये एक वेश्या की नियुक्ति की गई थी।[17] मांगलिक कार्यों एवं उत्सवों में वेश्याओं की उपस्थिति शुभ मानी जाती थी। इनसे यह प्रकट होता है कि कई तरह की वेश्याओं की स्थिति अच्छी थी। उनको समाज में महत्व दिया जाता था। श्री कृष्ण जब शान्तिवार्ता के लिये कौरवों के यहाँ आये तो उनका स्वागत वेश्याओं ने किया था।[18] यहीं नहीं युद्ध के लिये प्रस्थानोन्मुख पाण्डव सेनाओं के साथ वेश्यायें भी थी।[19] उद्योग पर्व के अनुसार युधिष्ठिर ने कौरवों की वेश्याओं को शुभ सन्देश भेजे थे।[20] इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि बहुसंख्यक वेश्याओं का सांस्कृतिक स्तर उच्च था।

बौद्ध कालीन समाज में तो गणिकाओं को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वे नगर की शोभा मानी जाती थी । समाज में उन्हें हेय दृष्टि से नहीं अपितु प्रशंसित दृष्टि से देखा जाता था। परमसुन्दरी, नयनाभिराम, गायन–वादन एवं नृत्य में पारंगत स्त्रियों को ही नगरवधू अथवा गणिका का पद प्रदान किया जाता था। गणिका का विधिपूर्वक अभिषेक किया जाता था।[21] वास्तव में गणिका पद को प्राप्त करना किसी भी स्त्री के लिये गौरवपूर्ण माना जाता था। महावग्ग के अनुसार आम्रपाली (वैशाली) और सालवती (राजगृह) इस काल की प्रसिद्ध राज्य गणिकायें थी जो परमसुन्दरी तथा संगीत कला में दक्ष थी।[22] जिन्हें राज्य की ओर से सम्मान और आदर प्राप्त था। इन गणिकाओं के अधीन अनेक अन्य सुन्दर और संगीत नृत्य में दक्ष गणिकायें होती थी जो इनके दल की शोभा बढ़ाती थी। ये सम्पूर्ण नगरवासियों का नृत्य–गायन एवं वादन के प्रदर्शन द्वारा मनोरंजन करती थी। ये गणिकायें बहुत अधिक सम्पन्न थी। बौद्ध ग्रन्थों में इनकी विलासिता एवं समृद्धि का पता चलता है। समाज में इनको अति सम्मानित एवं प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। समाज में इनकी उच्च स्थिति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है। कि महात्मा बुद्ध ने आम्रपाली के निमंत्रण को स्वीकार कर उसका आतिथ्य ग्रहण किया।[23] राज्य गणिकाओं के अतिरिक्त नगर में अन्य अनेक समृद्ध गणिकायें रहती थी। जातक ग्रन्थों में सामा[24] काली[25] और सुलसा[26] आदि अनेक सुविख्यात गणिकाओं के उल्लेख मिलते हैं।

धम्मपद के अनुसार चम्पा की गणिका देवदत्ता चौसठ कलाओं में प्रवीण और अपनी वाक्शक्ति, प्रवीणता, धनाढ्यता के कारण सहस्त्रों गणिकाओं की अध्यक्ष नियुक्त की गई थी।[27] गणिकाओं से उत्पन्न सन्तान को भी हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। बौद्ध युग का प्रसिद्ध वैद्य, जीवक गणिका सालवती का पुत्र था जिसने बड़ा होने पर राजवैद्य का पद प्राप्त किया,[28] यद्यपि सामान्यतः समाज में वेश्यावृत्ति को अच्छा नहीं माना जाता था। वात्स्यायन ने वेश्यावृत्ति का विस्तार से वर्णन किया है। उनके अनुसार वेश्याओं को अनेकानेक कलाओं की शिक्षा दी जाती थी और प्रशिक्षण के द्वारा उसका मानसिक, शारीरिक और सांस्कृतिक विकास किया जाता था। उसने वेश्याओं के नौ प्रकार बताये हैं।[29]

वह अपने अर्जित धन का उपयोग लोकोपकारी और धार्मिक कार्यों जैसे मन्दिर, तालाब, उपवन, पुल, यज्ञ, दान आदि कार्यों में भी करती थी। इस प्रकार वेश्यावृत्ति एक सामाजिक बुराई होते हुए भी समाज में उनका प्रभाव तथा महत्व अत्यधिक था तथा समाज में उनके लिये सामाजिक स्वीकृति थी।

समाज में विभिन्न प्रकार की वेश्याओं के अतिरिक्त स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग था, जो मन्दिरों की सेवा से सम्बद्ध था। इस वर्ग की स्त्रियाँ देवदासी कहलाती थी। ये देवदासियाँ मंदिरों में पूजन–अर्चन के समय तथा धार्मिक समारोहों में नृत्य–संगीत प्रस्तुत करती थी। मंदिरों में रहते हुए भी ये विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करती थी। समृद्धशालिनी होने के कारण अनेक देवदासियाँ पर्याप्त मात्रा में दान भी दिया करती थी। मेरूतंग के प्रबंधचिन्तामणि के अनुसार सोमनाथ के मंदिर में लगभग 500 देवदासियाँ थीं जो देव प्रतिमाओं के सम्मुख दिन–रात नृत्य और संगीत में सलग्न रहती थी।[30]
अलबरुनी के अनुसार वेश्याओं को दण्डित करने में हिन्दू बहुत कठोर नहीं थे।

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर यह प्रकट होता है कि प्राचीन भारतीय समाज में महिलायें पुरुषों के अधीन नहीं, बल्कि उनके बराबर थी। यद्यपि सामाजिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी तो पुरुषों के समान थी लेकिन राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के साथ नहीं रखा गया। इन क्षेत्रों में उनके साथ भेदभाव के भी प्रमाण मिलते हैं। शासन–प्रशासन में महिलाएं अल्पकालिक या अपने अवयस्क उत्तराधिकारियों के संरक्षक के तौर पर ही रहीं, पूर्णकालिक शासक प्रशासक के तौर नहीं। वहीं महिलाओं की उच्च सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक स्थिति की तुलना में आर्थिक क्षेत्रों में उनकी भूमिका अपेक्षाकृत गौण है क्योंकि अन्य सार्वजनिक गतिविधियों में भागीदारी की तुलना में कामकाजी महिलाओं के रूप में आर्थिक रूप से आत्म निर्भरता के प्रमाण कम मिलते हैं। यद्यपि जिन सीमित क्षेत्रों में उनकी भागीदारी थी वो शिक्षिका से लेकर गणिका तक उनका समाज में महत्वपूर्ण स्थान रहा फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्यतः महिलाओं को घरों के बाहर काम करना अच्छा नहीं माना जाता था। पूर्ण

स्वतंत्रता के बावजूद परम्परागत तौर पर उच्च एवं मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ को धन अर्जन के लिये नौकरी करने की परम्परा नहीं थी। सम्भवतः इसीलिये आर्थिक सुरक्षा के लिये प्राचीन समाज में स्त्री धन का प्रावधान किया गया था। फिर भी निम्न वर्ग की स्त्रियों को अपने घर का खर्च उठाने के लिये घर की चहारदीवारी से निकलकर काम करना ही पड़ता था।

ऐसा प्रमाण मिलता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर भारतीय सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक रही है और पितृसत्ता पुरुष प्रभुत्व और स्त्री की अधीनता को मान्यता देती है। परम्परागत रूप से भूमिका निर्धारण की प्रक्रिया में पुरुष और स्त्री के कार्यों की सीमा रेखा भिन्न–भिन्न थी जिसके कारण समाज में उच्चतम स्थान के बावजूद धन अर्जन जीविकोपार्जन के लिये स्त्रियों को काम करने की आवश्यकता महसूस नहीं की गई या उचित नहीं माना गया और सम्भवतः यही निर्भरता बाद के युगों में उनकी सामाजिक प्रस्थिति में गिरावट की मूल वजह बन गयी।

सन्दर्भ :

1. ए0 एस0 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ0 155
2. ऋग्वेद, 1/126/7, 1/179, 5/28, 8/91, 9/86, 10/39–40, 86, 95
3. बृहदारण्यक उपनिषद्, 3/6/8
4. वही
5. वही, 6/2/86, 'छात्रादयः शालायाम्।'
6. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/7/21/9
7. शांखायन गृह्यसूत्र, 4/10/3
8. महावस्तु, 2/225/2, 'सौन्दरानन्द, 18/20
9. महाभाष्य, 4/1/47, 'औदमेध्यायाश्छात्रा औदमेधाः।'
10. महाभारत, 3/305/20
11. वही, 1/57/94
12. वही, 3/33/57–58
13. वही, 3/57/11, 1/96/1, 5/130/5, 5/88/74, 5/134/12, 17/1/7
14. राम अहुजा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली, 1997, पृ0 83
15. राजतरंगिणी, 7/905, 909, 939, 1137–39
16. यजुर्वेद, 8/1, 'उपयाम गृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा
    विष्णऽउरूगायैष सोमस्तं रक्षस्व मा त्वा दभन्।।
17. वही, 1/115/39, 'गान्धार्या क्लिश्यमानायामुररेण विवर्धता।
    धृतराष्ट्रं महाराजं वेश्या पर्यचरत्किला।।
18. वही, 8/86/15
19. वही, 5/151/58
20. वही, 5/30/38
21. महावंश, 8/1/3
22. महावग्ग, 8/1/2,3
23. अ. वही, 6/30/1
24. कणवेर जातक, 3/8
25. तक्कारिय जातक, 489
26. सुलसा जातक, 419
27. अ. धम्मपद, अट्ठकथा, 4, पृ0 197
28. महावग्ग, 8/1/4
29. कामसूत्र, 6/6/50
30. प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0 108